E-ISSN: 2664-603X
P-ISSN: 2664-6021
IJPSG 2023; 5(1): 282-284
www.journalofpoliticalscience.com
Received: 23-04-2023
Accepted: 29-05-2023

डॉ. सुभाष चन्द्र
सहायक आचार्य (विधा संबल योजना) राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय, नेछवा, सीकर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. सुभाष चन्द्र
सहायक आचार्य (विधा संबल योजना) राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय, नेछवा, सीकर, राजस्थान, भारत

भारत में राष्ट्रवाद : एक विश्लेषण

डॉ. सुभाष चन्द्र

DOI: https://doi.org/10.33545/26646021.2023.v5.i1d.233

सारांश
राष्ट्रवाद के बारे में यह कहा जाता है कि इसकी कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। इसे समय एवं परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से परिभाषित किया है। पश्चिम का राष्ट्रवाद जो कि धर्म, भाषा या क्षेत्र पर आधारित रहा हैं। इसे भारत अमेरिका एवं चीन जैसे विविधता पूर्ण राष्ट्रों पर लागू नहीं किया जा सकता है इन राष्ट्रों में सांस्कृतिक एवं सभ्यतात्मक राष्ट्रवाद हमेशा विद्यमान रहा है इसीलिए यह राष्ट्र हजारों वर्षों तक एकता के सूत्र में बंधे रहे हैं। विभिन्न बाहरी शक्तियों द्वारा आक्रमण एवं साम्राज्य के बाद भी भारत अपनी एकता को बनाए रखने में सक्षम रहा हैं हालांकि अंग्रेजों की कुटिल चाल विभाजित करो और राज करो के कारण धार्मिक आधार पर भारत का विभाजन हुआ जो लंबे समय तक सही साबित नहीं हुआ। सन् 1971 में ही बांग्लादेश के रूप में पाकिस्तान का विभाजन भाषा के आधार पर हो गया हैं। अतः यह कहा जा सकता हैं कि भारत में सांस्कृतिक एवं सभ्यतात्मक राष्ट्रवाद हमेशा विद्यमान रहा है तथा इसी भावना के कारण आगे भी भारत अक्षण्णु बना रहेगा।

कूटशब्द : भारत, राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता, ब्रिटिश शासन, सांस्कृतिक

प्रस्तावना

राष्ट्रवाद का प्रतिपादन सर्वप्रथम 18वीं सदीं में जॉन गॉडफ्रेड हर्उर ने किया था। गॉडफ्रेड ने राष्ट्रवाद शब्द के माध्यम से जर्मन राष्ट्रवाद की नींव रखी थीं। गॉडफ्रेड ने समान उत्पत्ति और भाषा का हवाला देकर जर्मनों का एक राष्ट्र मानकर संगठित होने का आह्वान किया था। मूल रूप से साहित्य आलोचक गॉडफ्रेड को भी इस बात का अनुमान नहीं रहा होगा कि उसका यह वैचारिक आविष्कार विश्व को कितना बदल कर रख देगा। यही राष्ट्रवाद यूरोप में राष्ट्र राज्यों का आधार बना और आज सम्पूर्ण विश्व में शायद ही कोई राष्ट्र रहित राज्य होगा। राष्ट्रवाद के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव सामने आये हैं। अपने सकारात्मक प्रभाव में राष्ट्रवाद ने लोगो को समान अतीत, समान रंग रूप, समान भाषा और संस्कृति के आधार पर एकता के सूत्र में बांधा हैं। वहीं दूसरी तरफ अपने नकारात्मक प्रभाव में राष्ट्रवाद ने एक राष्ट्रीयता और धर्म को दूसरी राष्ट्रीयता और धर्म के साथ संघर्ष, घृणा और वैमनस्य में धकेल दिया हैं। दो विश्व युद्धों का कारण भी कटट्र राष्ट्रवाद हीं रहा हैं।

भारतीय राष्ट्रवाद एक आधुनिक तत्व हैं, जिसके उदय की प्रकिया अत्यन्त जटिल और बहुमुखी रहीं हैं। भारत में अंग्रेजों के आगमन से पहले ऐसी सामाजिक संरचना थी, जो विश्व के किसी अन्य देश में शायद ही रही हों। वह पूर्व मध्यकालीन यूरोपीय समाजों से भिन्न थीं। भारत विविध भाषा – भाषी और अनेक धर्मों – पंथों वाला विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश हैं, जो विभिन्न जातियों और उपजातियों में विभाजित रहा हैं। स्वयं हिंदू धर्म किसी विशिष्ट पूजा पद्धति का नाम नहीं हैं अपितु उसमें कितने ही प्रकार के दर्शन और पूजा पद्धतियां शामिल हैं। इस प्रकार हिंदू धर्म अनेक सामाजिक और धार्मिक विभागो मे बटां हुआ हैं। भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संरचना और विशाल आकार के कारण राष्ट्रीयता का उदय अन्य देशों की तुलना में अधिक कठिनाई से हुआ हैं। शायद ही विश्व के किसी अन्य देश में इस प्रकार की विविधताओं और असमानताओं में राष्ट्रवाद का उदय हुआ हो। सर जॉन स्ट्रेंची ने भारत की विविधताओं के बारे में कहा हैं कि भारतवर्ष के विषय में सर्वप्रथम जानने योग्य महत्वपूर्ण बात यह हैं कि भारतवर्ष न कभी राष्ट्र था, और न हैं, और न उसमें यूरोपीय विचारो की तरह किसी प्रकार की भौगोलिक, राजनैतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक एकता थी, न कोई भारतीय राष्ट्र था और न कोई भारतीय ही था जिसके विषय में हम बहुत अधिक सुनते हैं। इसी संबंध में सर जॉन शिले का कहना हैं कि यह भारतवर्ष एक राष्ट्र हैं जो उस मूल पर आधारित हैं, जिसको राजनीति विज्ञान स्वीकार नहीं करता हैं और दूर करने का प्रयास करता हैं।

उपरोक्त विचारो से स्पष्ट हो जाता हैं कि भारत में राष्ट्रवाद का उदय और विकास उन परिस्थितियों में हुआ हैं जो राष्ट्रवाद के मार्ग में सहायता पहुंचाने के स्थान पर बांधाए पैदा करती हैं। वास्तविकता यह हैं कि भारतीय समाज की विविधताओं में मौलिक एकता हमेशा मौजुद रही हैं। वी.ए. स्मिथ के अनुसार भारतवर्ष की एकता उसकी विभिन्नताओं में ही निहित हैं। भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना से भारतीय समाज में नये विचारो और नवीन व्यवस्थाओं का जन्म हुआ। इन विचारो तथा व्यवस्थाओं के बीच क्रियाओ और प्रतिक्रियाओ के परिणामस्वरूप भारत में राष्ट्रीय विचारो का जन्म हुआ। इन राष्ट्रीय विचारो के परिणामस्वरूप सन् 1857 का प्रथम स्वतन्त्रता आन्दोलन तथा ब्रिटिश उपनिवेशवाद के खिलाफ अनेक छोटे – बड़े आंदोलन हुये। इन आंदोलनो से भारतीय उपमहाद्वीप में एक राष्ट्रीयता का निर्माण होने लगा और गांधी जी के समय तक इसका एक स्वरुप भी बन चुका था। परंतु गांधी जी इस चेतना को राष्ट्रवाद में सीमित नहीं करना चाहते थे। वे इस परिघटना को पश्चिम की भौतिकवादी सभ्यता के विकल्प के संधान में प्रयुक्त करना चाहते थे। 19वीं सदी के उतरार्द्ध में चले मंथन के बाद केशव चंद्र सेन, सुरेंद्रनाथ बैनर्जी, राम कृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, दादा भाई नारौजी और गोपाल कृष्ण गोखले के विचारो के समान ही था। बाद में रवींद्रनाथ टैगोर ने राष्ट्रवाद की विनाशकारी खोज के लिए पश्चिमी सभ्यता की कड़ी आलोचना की थी, और कहा था कि राष्ट्र का विचार मानव द्वारा खोजी हुई बेहोशी की सबसे शक्तिशाली दवा हैं, इसके धूएं के प्रभाव से सम्पूर्ण देश नैतिक विकृति के प्रति बिना सचेत हुये, स्वार्थ–सिद्धि के खतरनाक कार्यक्रम को व्यवस्थित ढ़ंग से लागू कर सकता हैं। लेकिन इसी क्रम में भारतीय राष्ट्रवाद एक बहुत व्यापक अर्थ ग्रहण कर रहा था और दुनियाभर की दमित राष्ट्रीयताओं का ही नहीं, अपितु शोषित – पीड़ित मानवता की मुफ्ति का आह्वान कर्त्ता भी बन रहा था। स्वामी विवेकानंद, रविंद्र नाथ टैगोर, गांधीजी इसी आधार पर पश्चिम की भौतिकवादी लोलुपता और आक्रामकता का उत्तर ढूंढ़ रहे थे। लेकिन यह विडंबना ही रही कि बाद के वर्षों में कुछ राजनीतिक दलों और बुद्धिजीवियों ने यहां की विविधता को हर्डर के चश्मे से देखकर हर्डर के राष्ट्रवाद की ही पुष्टि की और भारत में अनेक राष्ट्रीयताओ का होना स्वीकार किया। भारतीय राष्ट्रवाद फिर क्या कोरी कल्पना है, या थी, क्या इसका कोई आधार नहीं है ? क्या यहां के लोगों के मध्य एकत्व का कोई सुत्र नहीं था, जो उन्हें एक सूत्र में बांधकर रखता हो और एक होने का भाव जगाता हों ? यूरोप के विपरीत भारतीय राष्ट्रवाद का आधार बहुलता और विविधता का ही रहा है। जैसा कि आज के अमेरिका में और चीन में है इसे यूरोपीय राष्ट्रवाद के आधार पर नहीं परखा जा सकता हैं।

भारत की जो कल्पना है, या विचार है, उसने उपनिवेश काल में एक मूर्त रूप अवश्य लिया, लेकिन वास्तव में यह सदियों से भारतवासियों के मानस मे, स्मृति में और कल्पना मे बना रहा हैं। इसकी एक भौगोलिक पहचान भी रही है जिसे आज भी धार्मिक अनुष्ठानों के अवसरों पर अभिव्यक्ति मिलती हैं– जम्बूद्वीपे, भरतखंडे, आर्यवर्ते –––– जो यज्ञमें देवताओं के आह्वान के लिए यजमान और यज्ञ को उनकी अवस्थिति से जोड़ता हैं। यहां किसी एक देश का भूगोल नहीं है बल्कि उसे वृहत भू–भाग की पहचान बताई जा रही है जो सबका साझा निवास है और इसलिए पहचान भी है।

भारतीय राष्ट्रीयता, किसी एक महापुरुष, एक स्मृति और एक इतिहास से नहीं बनती है, लेकिन इसका आधार कहीं ना कहीं एक भूखंड अवश्य है। जम्बूद्वीपे, भरतखंडे, आर्यवर्ते ––– वह वृहत भौगोलिक इकाई है जो भले ही एक राजनीतिक मानचित्र में समाहित नहीं है। लेकिन जिससे कन्याकुमारी से कश्मीर तक तथा सिंध – हिंदुकुश से असम – बर्मा की सीमा तक की परिधि में बसने वालों में एकात्मकता अनुभव की जाती रही है। राजनीतिक रूप से भारतीय उपमहाद्वीप भले ही एक इकाई न हो, अनेक राज्य – साम्राज्य और शासन व्यवस्थाऐं इसमें शामिल रही हो। लेकिन यह भी सत्य है कि जितने भी साम्राज्य भारत में बने उनमें लगभग सभी ने इसे एक राजनीतिक इकाई बनाने का प्रयास अवश्य किया था। चाहे वह पौराणिक चक्रवर्ती सम्राट हो या मोर्य हो, गुप्त हो, मुगल हो या फिर अंग्रेज। विदेशी आक्रमणकारियों के लिए भारत विजय का अर्थ इसी जंबूद्वीप भरतखंडे आर्यावर्ते पर एक छत्र शासन स्थापित करना रहा हैं। इस संपूर्ण क्षेत्र, समूचे भूखंड की आध्यात्मिक और सामाजिक चेतना का स्रोंत भी सम्मान रहा है, स्वपन्न और आकांक्षाएं भी सम्मान रही हैं।

आखिर यह किस प्रकार संभव हुआ कि उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम तक विभाजन से पहले से, अखंड भारत में निचले स्तर की संस्थाएं और प्रणालियां लगभग एक समान थी। ऊपर की व्यवस्थाएं बदलने से भी इन्हें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। राज्य – साम्राज्य बदल गए लेकिन ग्रामीण अर्थव्यवस्थाऐं और स्वशासन की व्यवस्थाएं अपरिवर्तित रहीं। भारतीय लोगों का सामुदायिक जीवन कहीं ना कहीं राष्ट्रवाद की भूमिका का निर्माण करता है। कम से कम 19वीं सदी तक भारत नगर व्यवस्था का देश नहीं रहा, यहां ग्राम सभ्यता का इतिहास हजारों वर्ष पुराना हैं। भारतीय मूल्यों और परम्पराओं का उत्सव वास्तव में इसी ग्राम सभ्यता में हैं, जो आत्मनिर्भर और स्वशासित इकाईयों से मिलकर बनती हैं। यहां ग्राम ही व्यक्ति की पहचान का सबसे ठोस और प्राथमिक आधार रहा हैं।

ब्रिटिश राज के दौरान स्थानीय स्वशासन की इकाईयों और प्रणालियों कों समाप्त करने के प्रयास किये जाने लगें, परिणामस्वरूप ब्रिटिश राज के खिलाफ सम्भवतः पहली बार सम्पूर्ण भारत उठ खड़ा हुआ था। इससे यह मानने और कहने का आधार बनता हैं कि भारतीय राष्ट्रवाद का स्रोंत वास्तव में स्वशासन की यही आत्मनिर्भर स्थानीय इकाईया थी। राष्ट्रवाद का अर्थ अगर एकत्व की भावना से समष्टि के लिये व्यष्टि का उत्सर्ग हैं, तो भारतीय राष्ट्रवाद का आधार भारत का नागरिक समाज (सिविल सोसायटी नहीं) हैं। जो रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों मे अनेक आक्रमणों और विजयों के बावजूद एक नैतिक यथार्थ के रू‍प में सुरक्षित रहा हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भारत का राष्ट्रवाद सांस्कृतिक एवं सभ्यतात्मक रहा हैं। भारत सांस्कृतिक रूप से एक रहा हैं, लेकिन फिर बात आगे बढ़कर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद तक जाती है या ले जाई जाती है और फिर इसे एक धर्म विशेष तक सीमित करने की कोशिश होने लगती है। इसमें फिर विशाल भूखंड ही नहीं धार्मिक विश्वास और प्रतीक भी शामिल होने लगते हैं। इस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की आज के सांस्कृतिक यथार्थ से टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। वास्तव में आज के भारत का सांस्कृतिक यथार्थ अत्यंत संश्लिष्ट सांस्कृतिक विविधता से बना है जिसमें अनेक पहचाने, अस्मिताऐं शामिल हैं, वह भी कभी–कभी एक दूसरे को खारिज और संघर्ष करती हुई। भारत की लोकतांत्रिक राजनीति इन पहचानों को मान्यता देने के साथ उकसाती भी है और अंततः इन्हें सत्ता केंद्रों में प्रतिनिधित्व भी दिलाती है। आज हमारी पारंपरिक स्थानीय स्वशासन की अनौपचारिक व्यवस्था को औपचारिक लोकतांत्रिक प्रणाली ने प्रतिस्थापित कर दिया है। भारतीय राष्ट्रवाद अब भारतीय लोकतंत्र में ही अभिव्यक्ति पाता हैं। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने आज राष्ट्रवाद को कड़ी चुनौती प्रस्तुत की है फिर भी इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि विश्व शांति और कल्याण के लिए धार्मिक वैमनस्य और धर्म आधारित हिंसा तथा आतंकवाद के

मुकाबले के लिए राष्ट्रवाद प्रयुक्त हो सकता है। राष्ट्रवाद नामक अस्त्र से इन बुराइयों को समाप्त किया जा सकता है और विश्व को बहुरंगी बनाया जा सकता है जैसा कि परमेश्वर ने इसे बनाया हैं।

सन्दर्भ

1. गुहा, रामचन्द्र : रवीन्द्रनाथ टैगोर नेषनलिज्म, पेंगुइन बुक्स, न्यू देहली, पृ.सं.65.66
2. थापर, रोमिला : ऑन नेशनलिज्म, रूपा पब्लिकेशन, न्यू देहली, 2018, पृ.सं.7–8
3. जय, आर : पोलिटिकल आइडियोलोजिट्स – एन इंट्रोडक्शन्, रूटलेज पब्लिशर्स, लंदन, 2004, पृ.सं.88
4. हबिब, एस. इरफान : इंडियम नेशनलिज्म, रूपा पब्लिकेशन, न्यू देहली, 2017, पृ.सं. 162
5. कुमार, बसन्त : डॉ. अम्बेडकर एण्ड नेशनलिज्म, प्रभात प्रकाशन, न्यू देहली, 2023, पृ.सं. 108
6. देसाई, ए.आर. : रीसेन्ट ट्रेन्ड्स इन इंडियन नेशनलिज्म, पोपुलर बुक्स, मुम्बई, 2002, पृ.सं. 54–55
7. सिंह, एस.आर. : नेशनलिज्म एण्ड सोशल रिफॉर्म इन इण्डिया, रणजीत पब्लिकेषन, न्यू देहली, 1980, पृ.सं.81
8. टैगोर, आर.एन. : नेशनलिज्म, मैकमिलन पब्लिशर्स, कलकत्ता, 1918, पृ.सं. 96
9. विश्वास, डी. एण्ड रेयान जे.सीः नेशनलिज्म इन इण्डिया–टेक्सट्स् एण्ड कॉन्टेक्सट्स्, रूटलेज, 2021, पृ.सं. 2–3
10. चन्द्रा, बिपन : इंडियन नेशनलिज्म, हर आनन्द पब्लिकेशन, 2004, पृ.सं.63